हत्यारे वामपंथियों के काले कारनामे

भारत में हिंसा द्वारा परिवर्तन की बात इस्लामी जिहाद और कम्युनिस्ट विचारधारा की देन है। अहिंसक लोकतांत्रिक भारतीय पद्धति से बदलाव लाने में भारत ने विश्व में अप्रतिम उदाहरण प्रस्तुत किया है, गरीबी, अशिक्षा व सांप तथा सपेरों के देश वाली छवि से भारत मुक्त होकर दुनिया के सबसे अच्छे सॉफ्टवेयर इंजीनियर, वैज्ञानिक और अध्यापक देने वाले ऐसे देश के नाते प्रतिष्ठित हुआ है जहां के उद्योगपति अमरीका व यूरोप में अनेक बहुराष्ट्रीय कंपनियों का अधिग्रहण कर चुके हैं। इस मार्ग की अपनी समस्याएं हैं पर उनका समाधान देशभक्ति और लोकतंत्र में है, बन्दूक और विदेश निष्ठा में नहीं है। कम्युनिस्ट विचारधारा में अर्न्तनिहित हिंसा का तत्व वामपंथी विरासत का बोझ है।

इजवेस्तिया के साप्ताहिक परिशिष्ट निदालय के अंक में प्रकाशित प्रो. आई. गॉक्स बेस्तुजहेव लाडा के एक लेख का सार प्रकाशित किया। वह स्टालिन के कार्यकाल के दौरान मारे गये लोगों की कुल संख्या 5 करोड़ बताते हैं जिसमें दूसरे विश्व युद्ध में मारे गये 2 करोड़ लोग शामिल नहीं थे। यही भयावह नियति पूर्वी यूरोपीय देशों की रही जो द्वितीय विश्व युद्ध के अंत में रूस की चपेट में आ गये थे। पूर्वी बर्लिन में सन् 1953 में 2 लाख मजदूर साम्यवादी तानाशाही के खिलाफ उठ खड़े हुए। पौलेंड में सन् 1956 में मजदूरों ने काम करना बंद कर दिया।

हंगरी में सन् 1956 में छात्र-समुदाय द्वारा विशाल विरोध आंदोलन किया गया। सन् 1968 में चेकोस्लोवाकिया में साम्यवादी प्रभुत्व के खिलाफ जन आंदोलन को उसकी पूरी जनसंख्या का समर्थन हासिल था। परंतु रूस की प्रतिक्रिया वही थी, तोपें और बंदूकें। माओ-त्से-तुंग ने भी स्टालिन के पदचिन्हों पर चलते हुए अपने ही लाखों देशवासियों, खासकर किसानों को मरवा डाला। बाद में चीनी विशेषज्ञों ने प्रकट किया कि चीन में पड़े बदतरीन अकाल के दौरान भुखमरी, बीमारियों आदि से कीड़ों की तरह नष्ट होने वाले लाखों लोगों के अलावा अमानवीय क्रूरता का शिकार बनने वाले लोगों की संख्या 90 लाख थी! चीन के मामले में आरजे रमेल इस संख्या को लगभग 3,87,02,000 बताते हैं।

कम्बोडिया में कम्युनिस्ट शासक पोलपोट ने अपने ही देश के 32 लाख नागरिकों की हत्याएं करवायीं थीं। अपनी खोजपरक पुस्तक 'मार्टीरडम ऑफ स्वयंसेवक्स (स्वयंसेवकों का बलिदान) में एसवी शेषगिरी राव ने बताया है कि माओवादियों का धनाढ्यों के खिलाफ गरीबों के क्रांतिकारी संघर्ष से कोई लेना-देना नहीं है। केरल में मार्क्सवादियों द्वारा मारे गये लगभग 85 से 90 प्रतिशत आरएसएस स्वयंसेवक दैनिक या साप्ताहिक मजदूरी पर काम करने वाले गरीब लोग थे जैसे बीड़ी बनाने वाले, मछुआरे, स्टेट में काम करने वाले, फार्मों में मजदूरी करने वाले इत्यादि।

जिन कम्युनिस्टों के नेतृत्व में चीन में चार करोड़ से अधिक निर्दोष निष्पाप नागरिक अत्याचार और बौद्धिक दमन का शिकार बनाकर मार डाले गये हों और जिनके नेता माओ को अपना नेता मानकर उसके नाम पर संगठन चलाने वाले नेपाल तथा भारत में हजारों नागरीको की हत्या के लिये जिम्मेदार आतंकवादी मुहीम को किसी क्रान्ति के नाम चला रहे हो, उनसे कैसे अपेक्षा की जा सकती है कि वे भारतीय जीवन पद्धति से नि:सृत ज्ञान और करुणा से कोई तादात्म्य रखेगें ? माओवादी एवं जिहादी हिंसा के पीछे विविधता को समाप्त कर एकरूपता लाने एवं भिन्न मत के अन्त की अभारतीय सोच रहती है। इसके समक्ष अदम्य राष्ट्र प्रेम और प्राचीन भारतीय सभ्यतामूलक विचार ही सफल हो सकता है जो सर्वाधिक के हित, विविधता में एकता और भिन्न मत के प्रति समझदारी पर टिका है। जिन कम्युनिस्ट आतंकवादियों ने नक्सलवाद या माओवाद का लिबास ओढ़कर केवल गत तीन वर्षों में 2600 भारतीयों की हत्या कर दी हो, उनके समर्थन में बोलने और लिखने वाले किस विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं ?

जो लोग माओवादी आतंकवादियों के कवच बनते और बनाते हैं, उन्हें हत्या के अपराध में शामिल क्यों नहीं माना जाना चाहिए ? गृहमंत्री पी. चिदम्बरम माओवादी हिंसा के बारे में स्पष्ट हैं- उन्होंने हमसे एक सामूहिक बातचीत में कहा कि- 'दीज आर कोल्ड ब्लडेड मर्डरर्स'- ये सिर्फ क्रूर हत्यारे हैं। चिदम्बरम ने पूछा- छोटे-छोटे 2 साल, चार साल तक के बच्चों को मारने के पीछे कौन सी क्रांतिकारी भावना है ? स्कूल, अस्पताल, सड़कें न बनने देने या सार्वजनिक सेवा के भवन तोड़ने के पीछे कौन सा जनहित है ? क्या जिन पुलिसकर्मियों की घात लगाकर माओवादी हत्याएं करते हैं, उनके परिवार, माता-पिता, पत्नी और बच्चे नहीं होते ? माओवादियों की कंगारू अदालतें ग्रामीणों को पकड़कर उन पर पुलिस की मुखबिरी से लेकर सामान्य अपराधों के मामलों की सुनवाई करतीं हैं और 'अपराधी' का सर-धड़ दिया जाता है- उनका यह न्याय कौन से कोबाड गांधी या अरुन्धती राय उचित ठरा सकते हैं।

एक समय था जब राजनीतिक कदाचार और प्रशासनिक भ्रष्टाचार के खिलाफ आंखों में लाल क्रांति का सपना तथा किताबों में सर्वहारा की तानाशाही के सिद्धांत लिए युवकों ने नक्सलवादी- लाल सलाम की गूंज उठायी थी। उनके नारे थे-चीन के चेयरमैन हमारे चेयरमैन। उन्हें विवेकानन्द, सुभाषचन्द्र बोस या ईश्वरचन्द्र विद्यासागर में अपने आदर्श नहीं दिखे-वे एक विदेशी विचारधारा और नायक के माध्यम से भारत में बदलाव की बात करते थे। उनके आदर्शों में चारु मजूमदार और राजू सान्याल के नेतृत्व में प्रारंभ ऑल इंडिया को आर्डिनेशन कमेटी 'ऑफ कम्युनिस्ट रिवोल्यूशनरीज' (कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों की अभा समन्वय समिति) बाद में भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) में तब्दील हुई जिसका हिस्सा छिटक कर माओवादी कम्युनिस्ट सेंटर (एमपीजी) के रूप में बिहार और उड़ीसा में सक्रिय हुआ। इसका भी बाद में आन्ध्र के पीपुल्स वारग्रुप में विलय हुआ और समन्वित इकाई भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) कही गयी।

गृहमंत्रालय के सूत्रों के अनुसार माओवादी आईएसआई, उल्फा, लिट्टे तथा चीन से ही हथियार नहीं प्राप्त करते बल्कि इस्लामी तालिबानों के साथ भी उन्होंने गठबंधन किया है। भारत के 13 राज्यों में लगभग 20 हजार प्रशिक्षित और 50 हजार सामान्य माओवादी हिंसा के सूत्र बने हुए हैं जो सुरक्षा सैनिकों और सामान्य देशभक्त भारतीयों की अमानवीय हत्याएं कर रहे हैं। उनका सामना करने के लिए भारत की जनता का 7 हजार करोड़ से अधिक धन व्यय हो रहा है जो अन्यथा ग्रामीण क्षेत्र और शहरी

आधुनिकीकरण में खर्च किया जाता। यह सत्य है कि माओवाद अंधाधुंध प्रत्याघात से समाप्त नहीं हो सकता-उसके लिए जनशक्ति और राजशक्ति का समन्वय एवं राजनेता और प्रशासक का ईमानदार होना भी जरूरी है। लेकिन समस्याओं के समाधान का हिंसक मार्ग हर हाल में निर्ममतार्पूवक समाप्त किया ही जाना चाहिए।

नक्सलवादी, माओवादी हिंसक आंदोलन बाह्य शक्तियों से ज्यादा खतरनाक और जटिल इसलिए हैं क्योंकि वे स्थानीय समाज में छिपकर रहते हैं, वहीं से बन्दूक की नोक पर कार्यकर्ता भर्ती करते हैं और समान्तर माफियाराज कायम करते हैं। माओवादी भारत की जनता के सबसे बड़े शत्रु इसलिए हैं क्योंकि बन्दूक के दम पर वे कहीं भी सत्ता में परिवर्तन और विकास नहीं ला पाये। अगर उन्हें अपने विचारधारा के प्रति निष्ठा है तो वे लोकतांत्रिक पद्धति अपनाने से क्यों डरते हैं ?

साभार http://hindugatha.blogspot.com/ से